कविवर बिहारी
के
सुबोध दोहे
वियोगी हरि
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

# कविवर बिहारी
के
# सुबोध दोहे

नित्य पठन और मनन के लिए

वियोगी हरि

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९८१
मूल्य : २.५०

मुद्रक
कंवल किशोर द्वारा लखेरवाल प्रेस, करोल बाग
नई दिल्ली-५ में मुद्रित

# प्रकाशकीय

इस पुस्तक-माला की यह छठी कड़ी है। पहली पुस्तक थी गोस्वामी तुलसीदास के सुबोध दोहे, दूसरी कबीर साहब की सुबोध साखियां, तीसरी रहीम के सुबोध दोहे, चौथी गिरिधर की सुबोध कुंडलियां और पांचवीं वृन्द कवि के सुबोध दोहे।

इन पुस्तकों के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य पाठकों को ऐसी सामग्री देना है, जो बहुत ही सरल-सुबोध हो और जिसका पाठक प्रतिदिन स्वाध्याय करके अपने दैनिक जीवन में लाभ उठा सकें।

हमें हर्ष है कि इन पुस्तकों का सभी क्षेत्रों में और पाठकों के सभी वर्गों में हार्दिक स्वागत हुआ है और इनकी मांग बराबर आती रहती है। थोड़े-से समय में ही कुछ पुस्तकों का तो पुनर्मुद्रण करना पड़ा हैं।

इन सभी पुस्तकों की सामग्री का चुनाव संत-साहित्य के मर्मज्ञ श्री-वियोगी हरिजी ने किया है और चुनाव में इस बात की सावधानी रखी है कि पाठकों को नीति और अध्यात्म की केवल ऐसी रचनाएं मिलें, जो सहज ही समझ में आ जायें। उन रचनाओं को और भी बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंने उनका अर्थ दे दिया हैं। श्री वियोगी हरिजी स्वयं उच्चकोटि के कवि हैं। अतः उनका अर्थ भी अत्यन्त सरस है और उससे उन रचनाओं का आकर्षण और भी बढ़ गया है। भावों की स्पष्टता के लिए कहीं-कहीं संकलनकर्त्ता ने कुछ टिप्पणियां भी दे दी हैं।

'मंडल' ने वैसे नीति, दर्शन तथा अध्यात्म के सम्बन्ध में बहुत-सा साहित्य प्रकाशित किया है, लेकिन इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। ये बुद्धिजीवियों तथा सामान्य पढ़े-लिखे, दोनों वर्गों के लिए समान रूप से उपयोगी हैं। पाठक इनमें जितनी गहरी डुबकी लगायेंगे, उतने ही मूल्य-वान रत्न उनके हाथ पड़ेंगे।

इस माला में और भी कुछ पुस्तकें निकलने जा रही हैं। लेकिन हमारे उद्देश्य में पूरी सफलता तो तभी मिलेगी, जब अधिक-

से-अधिक पाठक इन पुस्तकों को पढ़ें और गुनें। ज्ञान आवश्यक है, लेकिन जबतक उसके अनुसार आचरण न किया जाय, वह अधूरा है। सन्तों की कथनी और करनी में अन्तर नहीं होता, इसीसे उनकी वाणी लोगों के दिलों पर गहरा असर करती है।

मोटे-मोटे ग्रंथों के अध्ययन के लिए अब अधिकांश पाठकों के पास समय नहीं है, न रुचि ही है। ऐसी दशा में ये छोटी-छोटी पुस्तकें उनके लिए विशेष काम की सिद्ध होंगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

पाठकों से अनुरोध है कि वे इन पुस्तकों को ध्यानपूर्वक पढ़ें और यदि उन्हें पसंद आयें तो दूसरों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

—मंत्री

# दो शब्द

हिन्दी-सतसैयों की परंपरा में 'बिहारी-सतसई' का अपना विशेष स्थान है। रीति-साहित्य में यह 'सतसई' बड़ी लोकप्रिय रही है। कविवर बिहारी को इस कला-कृति से अच्छी ख्याति मिली है। 'बिहारी-सतसई' पर अनेक टीकाएं हुई हैं और तुलनात्मक समीक्षाएं भी किन्तु तुलसी, कबीर और रहीम के दोहों को सामान्य जनों ने जितना अपनाया और उन्हें जीवनोपयोगी माना, उतना प्रचार 'बिहारी-सतसई' के दोहों का नहीं हुआ है। इसका एक कारण यह जान पड़ता है कि इसमें प्रधानता श्रृंगार को—और उत्तान श्रृंगार को भी—दी गई है, जिसे रीतिकालीन कवियों ने स्वाभाविक मान लिया था। इसीलिए श्रृंगार-रसिकों के लिए यह 'सतसई' कण्ठहार बन गई।

कविवर बिहारी ने कई अन्य श्रृंगारी कवियों की तरह भगवद्-भक्ति के तथा लोकोपयोगी अन्योक्तिपरक दोहे भी रचे थे। 'सतसई' में उनका अपना स्थान है, जो निस्संदेह ऊंचा है।

लगभग ऐसे सौ दोहों का हमने प्रस्तुत पुस्तक में संकलन किया है। उनका सरल अर्थ भी दे दिया है। हिन्दी-साहित्य के ऊंचे पारखी लाला भगवानदीन की 'बिहारी बोधिनी' से भावार्थ करने में सहायता ली गई है, इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

स्व० मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' ने 'बिहारी-सतसई' का उर्दू शेरों में बड़ा सुन्दर अनुवाद किया था। उसका नाम है—'गुलदस्त-ए-बिहारी।' सद्भाग्य से 'प्रीतम' जी के हमने बचपन में कई बार दर्शन किये थे। बिजावर से छतरपुर वे अक्सर आया करते थे लाला भगवानदीन तथा अन्य साहित्यिक मित्रों से मिलने के लिए। वे सरल प्रकृति के एक अच्छे कवि और राम-भक्त थे।

स्व० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'बिहारी-रत्नाकर' की भूमिका में 'गुलदस्तए बिहारी' का उल्लेख करते हुए लिखा है—"दोहों का उर्दू शेरों में जो अनुवाद कवि ने किया है उससे लक्षित होता है कि दोहों के अर्थों को समझाने का उन्होंने अच्छा प्रयास तथा अनुसंधान किया है। यह बड़ी बात है कि बिहारी ऐसे कवि के पूरे एक दोहे का अर्थ पूरे एक शेर में झलकाया है।"

ब्रजभाषा और उर्दू पर उनका समान अधिकार था। खेद है कि हिन्दी-संसार में 'गुलदस्ता-ए-बिहारी, का यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ। यह पुस्तक आज अप्राप्य भी है। संकलित दोहों के साथ-साथ 'प्रीतम' जी का उर्दू अनुवाद भी दे दिया गया है।

आशा है, इस संकलन को समाज के सामान्यजन लोकोपयोगी पायेंगे और चाव से अपनायेंगे।

—वियोगी हरि

# कविवर बिहारी

के

# सुबोध दोहे

□

# ध्यान और विनय

१

मेरी भवबाधा हरो, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाँई परे, स्याम हरित दुति होय ।।

मेरी सांसारिक बाधा को, जन्म-मरण की आपदाओं को, वे राधा नागरी दूर करें,

जिनके शरीर की (पीत)-छाहं पड़ने से श्यामसुन्दर की द्युति हरी हो जाती है ।

[लाला भगवानदीनजी 'हरित द्युति' का अर्थ करते हैं कि "हरी गई है द्युति जिनकी, अर्थात् श्रीकृष्ण भी आनन्दित हो जाते हैं ।"

किन्तु पहला अर्थ अधिक लोकप्रिय है। किंचित् पीत-गौर रंग और श्याम रंग से हरा रंग बन जाता हैं । ]

मेरे अफ़कारे दुनिया दूर कीजे राधिका रानी ।
कि जिनके सायएतन से, हरे हों श्याम नूरानी ।।

शब्दार्थ : अफ़्कार=फ़िक्रें, चिन्ताएं; नूरानी=द्युतिमान्, प्रकाशित ।

२

मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
यहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल ।।

सिर पर मोर-पंखों का मुकुट, कमर पर काछनी, हाथ में मुरली और हृदय पर वनमाला,

श्रीकृष्ण की यह सुन्दर बानक मेरे मन में सदा बसी रही ।

मुकुट सिर, काछनी जेबें कमर, सीने पे वनमाला ।
लिये हाथों में मुरली, दिल में बसिये मेरे नंदलाला ।।

३

मोहनि मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोय ।
बसति सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय ।।

देखो, श्यामसुन्दर की मोहिनी मूर्ति की बड़ी अनोखी गति या रीति है ।

चित्त के सुन्दर दर्पण में वह बसी हुई है, पर सारे जगत् में उसका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है ।

अजब कुछ श्याम की उस मोहिनी मूरत में शक्ती है ।
बसी गो शीशए दिल में मगर बाहर झलकती है ।।

४

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग ।
जिहिं ब्रज केलि-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग ।।

तीर्थों का भटकना तू छोड़दे, कृष्ण और राधा के सुन्दर रूप का ध्यान कर, ।

जिस रूप-माधुरी से व्रज की केलि-निकुंजों के मार्ग का एक-एक पग स्वभावतः तीर्थराज प्रयाग के समान है ।

तजो तीरथ, भजो हरि-राधिका का जिस्म नूरानी ।
त्रिवेनी जिनके केलों से है पग-पग मग ब-आसानी ।।

शब्दार्थ : ब-आसानी=सहज ही, सरलता से ।

५

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ।।

घने-घने कुंज, उनकी सुहावनी सुखद छाया और शीतल और मंद पवन, यमुना के उस तट पर आजभी उस सबका स्मरण हो आता है ।

हवा ठंडी, घनी कुंज और छाया लहलहाती है ।
लबे बहरै-जमुन अब भी वही कैफिय्यत आती है ।।

शब्दार्थ : लबे बहरै जमुन=जमुना के तट पर ।

६

सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहर लसति मनो पियें, दावानल की ज्वाल।।

सखी ! तनिक देखो तो गोपाललाल के हृदय पर गुंजाओं (घुंघुंचियों) की यह माला कैसी शोभा दे रही है !

लगता है, श्रीकृष्ण ने जो दावानल पी लिया था, उसी की यह ज्वाला बाहर दिखाई दे रही है।

अली, व्रजराज के उर राजती है गुंज की माला।
रही है झिलमिला गोया दवानल की प्रगट ज्वाला।।

७

जहां-जहां ठाढ़ो लख्यो, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूं बिन छिन गति रहति, दृगनि अजहूँ वह ठौर।।

जहां-जहां पर श्यामसुन्दर के स्वरूप को खड़े देखा है,

वह स्थान उनके उपस्थित न होते हुए भी अबभी बरबस नेत्रों को खींच लेता हैं।

खड़े देखे थे जिस जिस जा धरे सिर पर मुकुट सुन्दर।
पकड़ रखती है उन बिन वह जगह अब भी निगह दमभर।।

शब्दार्थ : जा=जगह ; निगह=दृष्टि।

८

नितप्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक ।
चहियत जुगलकिसोर लखि, लोचन जुगल अनेक ।।

नित्यप्रति एक साथ ही श्यामा और श्याम रहते हैं, चाहे अवस्था हो, चाहे वर्ण हो, चाहे मन हो, सभी प्रकार से दोनों एकसमान हैं ।

ऐसे युगलकिशोर की रूपमाधुरी निरखने के लिए अनेक युगल नेत्र चाहिए।

बरन मन बैस है इक साथ भी जाता नहीं छोड़ा ।
वो जोड़ी देखने को चाहिए आंखें कई जोड़ा ।।

९

मोर मुकुट की चन्द्रिकनि, यौं राजत नंदनन्द ।
मनु ससिसेखर के अकस, किय सेखर सत चन्द ।।

मोर पंखों के मुकुट की चन्द्रिकाओं से श्रीकृष्ण ऐसे शोभित हो रहे हैं,

जैसे शिव से ईर्ष्यावश कामदेव ने एक साथ सौ चन्द्रमाओं को अपने शिर पर धारण कर लिया हो।

हिलाले ताज ताऊसी की जीनत का है यह कारन ।
बजिद्दे चन्द्रशेखर ये किये सद चन्द्र हैं धारन ।।

**शब्दार्थ :** हिलाल = नया चन्द्रमा; ताजे ताऊसी = मोर मुकुट; ज़ीनत = शोभा, सजावट; बजिद्दे = हठपूर्वक ।

१०

नाचि अचानक ही उठे, बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नन्दित करी, यह दिसि नन्दकिसोर ॥

वन में मोर यकायक नाच उठे, वर्षा के बिना ही,

जान पड़ता है कि घनश्याम ने इस दिशा को आनन्दित कर दिया है। मोरों को भ्रम हो गया घन-घटा का, घनश्याम कृष्ण को देखते ही।

अचानक नाच उठे बन मोर बिन ही घोर घन छाये।
समझ पड़ता है, शायद इस तरफ घनश्यामजी आये ॥

११

प्रलय करन बरषन लगे, जुरि जलधर इकसाथ।
सुरपति गर्व हर्‌यौ हरषि, गिरिधर गिरि धर हाथ ॥

प्रलय-कालीन बादल इकट्ठे होकर ब्रज में बरस पड़े।

कृष्ण भगवान् ने आनन्दित होकर हाथ पर गिरिराज गोवर्धन को उठा लिया। इन्द्र का गर्व खर्व हो गया कि वह ब्रज को डबो नहीं सका।

लगे मिलकर बरसने मेघ बरषा कर दिया महशर।
बहाई इन्द्र की शेखी, सिरी गिरिधर ने गिरि धरकर ॥

शब्दार्थ : महशर — प्रलय; शेखी — गर्व, घमंड।

१२

लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोंपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गौ गोपी गोपाल ॥

जिस क्रुद्ध इन्द्र ने बिना वर्षा-काल के ही (व्रज में) प्रलय कर देना सोचा था, उसका श्रीकृष्ण ने गर्व दूर कर दिया, और गोवर्धन को उठाकर गौओं, गोपों और गोपियों की रक्षा की।

क़यामत इन्द्र ने बेवक्त करदी, कहर कर भारी।
मुहाफ़िज़ बन गये गो गोप गोपीगन के गिरिधारी॥

शब्दार्थ : क़यामत=प्रलय; क़हर=क्रोध; मुहाफ़िज़=रक्षक।

१३

मकराकृति गोपाल के, कुंडल सोहत कान।
धंस्यौ समर हिय-गढ़ मनो, ड्यौढ़ी लसत निसान॥

मकर अर्थात् मछली के आकार के कुंडल श्रीकृष्ण के कानों में ऐसे शोभित हो रहे हैं,

जैसे कामदेव उनके हृदय-रूपी किले के अन्दर प्रवेश कर गया हो और मकराकृति कुंडल उसीकी विजय-ध्वजाएं हों, जो किले के फाटक पर शोभित हो रही हैं।

ये मकराकिरत कुंडल कान में, हैं शान महबूबी।
अलम उड़ता धंसा है किलअए दिल में शहे खूबी ॥

शब्दार्थ : महबूबी=प्यारी; अलम=ध्वजा, पताका।
शह खूबी=सौन्दर्यराज अर्थात् कामदेव।

१४

गोपिन संग निसि सरद की, रमत रसिक रसरास।
लहाछेह अति गतिन की, सबनि लखे सब पास ॥

शरद की पूर्णिमा में गोपियों के साथ रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण ऐसा रासनृत्य कर रहे हैं और शीघ्रता से नृत्य में इस प्रकार घूम जाते हैं कि हरेक गोपी ने उन्हें अपने ही समीप देखा।

रमे रस रास गोपिन संग, शरद की रैन उजियारी।
हरइक ने पास चंचल गत से यक सूरत लखी न्यारी ॥

१५

अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बांसुरी, इन्द्रधनुष-सी होति।।

श्रीकृष्ण वंशी को जैसे ही अपने होंठ पर रखते हैं, उस समय एक अजीब छटा देखने में आती है।

लाल-लाल होंठ, श्याम और लाल दृष्टि, और पीताम्बर का पीला रंग और वंशी हरे बाँस की, ये सारे रंग एकसाथ इन्द्रधनुष के समान दीखते हैं।

अधर धरते अधर पट डीठ की आभा झलकती है।
हरी हरि की मुरलि क़ौसे-क़ुजह के रंग दमकती है।

शब्दार्थ : क़ौसे-क़ुजह = इन्द्रधनुष।

१६

सोहत ओढ़े प्रीतपट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैलपर आतप पर्‌यो प्रभात।।

श्री कृष्ण का सुन्दर श्याम गात पीतांबर ओढ़े हुए क्या ही शोभा दे रहा है, मानो नीलम के पर्वत पर प्रातःकाल की धूप पड़ रही हो।

क़दे घनश्याम पर क्या पीतपट की ज़ौ दमकती हे।
जियाये होर सहरी कोहे नीलम पर चमकती है।

शब्दाथ : ज़ौ = आभा, चमक। जियाय = प्रकाश। सहरी = प्रातःकाल का। होर = सूरज।

१७

लिखन बैठि जाकी सबिहिं गहि-गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।

दुनिया के कितने ही कुशल चित्रकार जिसकी तस्वीर बड़े गर्व और गरूर के साथ उतारने के लिए बैठे,

पर सही तस्वीर उतार न सके और वे सब वेवकूफ बन गये ।

किसका चित्र ? ऐसा चित्र ब्रह्म का ही हो सकता है। बड़े-बड़े तत्ववेत्ताओं ने उसका यथार्थरूप शब्दों पर उतारना चाहा, पर वह उतर न सका और अपने अज्ञान को देखकर नेति-नेति की शरण लेनी पड़ी ।

[लाला भगवानदीनजी ने इस दोहे को रूपवती नायिका के चित्रांकण पर घटाया है। अपनी-अपनी रुचि, अपना-अपना भाव ।]

मुसौवर सैंकड़ों तसवीर उसकी खेंचने आये ।
वले मखबूत, हुस्ने हर मिनट आफत्र ने ठहराये ।।

१८

जप माला छापा तिलक, सरे न एकौ काम ।
मन कांचे नाचे वृथा, सांचे रांचे राम ।।१७।।

एक भी काम पूरा होने से रहा, न जप करने की माला काम देगी, न छापा और न तिलक ।

मन कच्चा है अर्थात् चंचल है, तो यह सारा नाच और स्वांग बेकार है।

राम तो सच्चे अनुराग से ही प्रसन्न होते हैं।

तिलक तसबीह छापों से जज़ा का मत हो मुतकाज़ी।
है नामकबूल खामी दिल को, हक तो हक से है राज़ी।

१६

यह जग कांचो कांच सो, मैं समुझ्यो निरधार।
प्रतिबिंबित लखिये जहां, एकै रूप अपार॥

मैंने भली भांति जान लिया है, और इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यह कच्चा अर्थात् न टिकनेवाला संसार कांच यानी शीशे के समान है।

अगणित रूपों में ईश्वर का एकही रूप प्रतिबिम्बित हो रहा है।

बिलाशक कांच-सा कच्चा है ग़ाफिल ! ये जहां फानी।
झलकता ला-अदद रूपों में है इक रूप रब्बानी॥

शब्दार्थ : बिलाशक=निस्सन्देह; फानी=नाशवान्;
ला अदद=असंख्य; रब्बानी=दैवी।

## २०

तौलगि या मन सदन में, हरि आवें किहि बांट ।
बिकट जटे जौलौं निपट, खुले न कपट-कपाट ।।

मनरूपी गृह में तबतक किस रास्ते से ईश्वर आये,
कपट के कपाट जबकि बड़ी विकटता से बंद कर रखे हैं ।

कहो किस तरह बैतुलकल्ब में तबतक खुदा आये ।
न जबतक कल्ब का फाटक ये बिल्कुल साफ खुल जाये ।।

शब्दार्थ : बैतुल-कल्ब=हृदय का रास्ता ।

## २१

भजन कह्यो तासों भज्यो, भज्यो न एकौ बार ।
दूर भजन जासों कह्यो, सो तू भज्यो गंवार ।।

तू उससे तो भागा, जिसका भजन करने को तुझसे कहा गया था,

और जिससे भागने को कहा गया था, उसीमें तू आसक्त हो गया । तू कैसा गंवार है !

[भजन के यहां दो अर्थ हैं : पहला अर्थ है ईश्वर का नाम-स्मरण करना और दूसरा अर्थ है भागना ।]

भजा मुतलक न उसको था जिसे भजना लगाकर दिल ।
कहा भजने को जिससे, दूर था उसको भजा ग़ाफ़िल ।।

शब्दार्थ : मुतलक=बिलकुल; ग़ाफ़िल=अचेत ।

२२

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाव।
तरि संसार-पयोधि को, हरि-नामे करि नाव ।।

अरे ! अब कोई दूसरा चारा नहीं। तू तो इस अन्त समय में एक मालारूपी पतवार को ही पकड़ ले,और संसार-सागर को पार करजा हरि नाम की नौका बनाकर।

बना हरिनाम की तू नाव औ माला की पतवारी।
सिवा इसके तू तर सकता नहीं, भव-सिंधु से भारी ।।

२३

यहि बिरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहननाव चढ़ाय जिन, कीने पार पयोधि ।।

यह घड़ी किसी और उपाय करने की नहीं ।

उसी मांझी को तू खोज ले, जिसने पत्थर की नौका पर चढ़कर अनेक डूबते हुओं को संसार-सागर से पार कर दिया है।

उसी मल्लाह के है हाथ अब तो खूबिओ जिश्ती।
उतारा पार था जिसने चढ़ाकर संग की किश्ती ।।

शब्दार्थ : खूबी=अच्छा; जिश्ती=बुरा; संग=पत्थर।

२४

दूरि भजत प्रभु पीठि दे, गुन बिस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चंग रंग गोपाल॥

ईश्वर मानो एक पतंग है। अपने गुण का अहंकार करने से वह दूर चला जाता है, जैसे डोरी को बढ़ाने से पतंग दूर हो जाती है।

[अपने को गुणहीन मान लेने पर, गुणहीन अर्थात् अहंकार-मुक्त मान लेने पर ईश्वर समीप आ जाता है, ठीक उसी तरह जैसे डोरी को समेट लेने पर पतंग समीप आ जाती है।]

किये विस्तार गुन का भागते हैं पीठ दे हटकर।
निकट निर्गुन के आहैंग ते ब रंगेचहैं नश्वर॥

शब्दार्थ : बरंग=समान।

२५

जात-जात बित होत है, ज्यों जिय में संतोष।
होत-होत त्यों होय तो, होय घरी में मोष॥

जैसे धन-दौलत के खत्म होते-होते धीरे-धीरे सन्तोष ही करना पड़ता है, वैसे ही यदि धन के बढ़ते समय भी सन्तोष हो जाये, तो कुछ ही समय में मोक्ष प्राप्त हो जाये।

[मतलब यह कि बुरे साधनों से यदि धन को न बढ़ाया जाये और यह सन्तोष रखा जाये कि जो भाग्य में था वह मिल

गया तो मोक्ष तत्काल प्राप्त हो जाता है। धन के नष्ट होने पर संतोष का होना किस काम का ? ]

तनज्जुल में तसल्ली जिस तरह है, दिल की हम करते ।
तरक्की में भी कर सकते तो छिन में मुक्ति पा सकते ।।

शब्दार्थ : तनज्जुल=गिरती हुई हालत; तसल्ली=सन्तोष ।

२६

ब्रजबासिन को उचित धन, जो घनरुचि तन कोय ।
सुचित न आयो सुचितई, कहो कहां ते होय ।।

व्रजवासियों का सच्चा धन, जिसका शरीर श्यामघन की कान्ति वाला है, यदि चित्त में नहीं समाया, तो कहो, शान्ति-लाभ कैसे हो सकता है ?

सलौना श्याम सुन्दर जो कि है ब्रजवासियों का घन ।
नहीं है दिलनशीं जबतक, हो कैसे दिल ये मुतमय्यन ।।

शब्दार्थ : दिलनशीं=हृदय में बसा हुआ; मुतमय्यन=शान्त, स्थिर ।

२७

जम-करि मुख तरहरि परो, यह धरि हरि चितलाय।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाय।।

अरे! तू ईश्वर में अपना मन लगा यह समझकर कि यम-रूपी हाथी के दांतों के नीचे तू पड़ा हुआ है।

विषय-तृष्णा छोड़कर अबभी तू नृसिंह भगवान् के गुणों का कीर्तन कर।

पड़ा फीले अजल के जेर दन्दां तक निगहबानी।
सुमिर नरहरि न हो अब्र तिशनए लज्जात नफ्सानी।।

शब्दार्थ : फीले अजल=यमरूपी हाथी; जेर दन्दां=दांतों के नीचे; तिशन=तृष्णा, प्यास; लज्जात=स्वाद; नफ्सानी=कामवासना।

२८

जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आंखिन सब देखिए, आंखि न देखी जाहिं।।

जिसने तुझे सारे जगत् का ज्ञान दिया, उस ईश्वर को तूने न जाना। जिन आंखों से हम सारी चीजें देखते हैं, वे आंखें खुद नहीं देखी जा सकती हैं।

जनाया जिसने ये आलम वो खुद जाना नहीं जाता।
हैं दीदे देखते सब, पर नहीं दीदा नजर आता।।

शब्दार्थ : दीद=आंख; दीदा=देखनेवाला।

२९

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यो मनो तारन-बिरद, बारक बारन तारि ॥

प्रभो ! तुमने तो मेरी प्रार्थना पर ध्यान ही नहीं दिया, और मेरा आर्तनाद तुम्हें फीका लगा।

ऐसा लगता है कि गजेन्द्र को तारकर दूसरों को तारने का तुमने अपना विरद ही छोड़ दिया है।

किया अगमाज अच्छा अब नहीं होती है सुनवाई।
करी को तार कर यक बार अब गोया क़सम खाई ॥

शब्दार्थ : अगमाज़=ध्यान न देना, चुप्पी साध लेना।

३०

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईं नहिं भूल।
दई-दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥

विपदा के समय तू आह न भर, और संपदा के समय स्वामी को न भूलजा।

क्यों करता है सदा 'हाय दई', 'हाय दई'? भगवान् ने दुःख या सुख जो कुछ भी दे दिया, उसे कबूल करले।

न राहत में खुदा को भूल, न तू हो रंज में शाकी।
उसी पर सर झुकाये रह तू जो मरजी हो मौला की ॥

शब्दार्थ : राहत=सुख। शाकी=शिकायत करनेवाला।

३१

कौन भांति रहिहै बिरद, अब्र देखिबी मुरारि।
बीधे मो सों आन कै, गीधे गीधहितारि ।।

देखता हूं कि अब कैसे तुम्हारा विरद रहता है!

एक गीध (जटायु) को तारकर तुम्हें लगता है कि तुम प्रसिद्ध हो गये तारने की कला में!

पर मुझे तार देना बड़ा ही कठिन है। यहां आकर तुम फंस गये हो।

ये देखें किस तरह रहती है अब हजरत वो गफ्फारी।
हुए मशहूर कर्गस तार कर मेरी है अब वारी।।

शब्दार्थ : गफ्फारी=पापों का क्षमा करना। कर्गस=गीध।

३२

बंधु भये का दीन के, को तार्‌यो रघुराय।
तूठे-तूठे फिरत हो, झूठे बिरद बुलाय।।

तुम आखिर किस दीन के बन्धु हो ? किसको तारा है तुमने ?

मुझे तो ऐसा मालूम होता है रघुराज, कि लोगों से झूठी ही प्रशंसा करवा-करवा कर तुम फूले-फूले फिर रहे हो !

हुए किस दीन के तुम बन्धु, तारा किसको रघुराई ।
फिरो फूले मगर सच्ची नहीं ये शोहरत अफजाई ।।

शब्दार्थ : शोहरत=कीर्ति । अफजाई=उत्साह, हौसला ।

३३

थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि ।
तुम हू कान्ह मनो भये, आज कालि के दानि ।।

पहले तो तुम थोड़े ही गुण से प्रसन्न हो जाते थे । वह स्वभाव तुम्हारा अब कहां चला गया ? अपनी उस आदत को तुम भूल गये क्या ?

हे कृष्ण ! आज के जमाने के दानी क्या तुम भी हो गये ? मतलब यह कि या तो चाटुकारी करने से तुम कुछ देते हो, या फिर योंही टाल देते हो ।

वो थोड़े वस्फ ही पर रीझने की बान को खोया ।
मुखय्यर इस जमाने के बने हैं आप भी गोया ।।

शब्दार्थ : वस्फ=गुण । मुखय्यर=दानी ।

३४

कब को टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय ।
तुम हू लागी जगत-गुरु जगनायक जग-बाय ।।

हे श्याम ! मेरी तुम सहाय नहीं कर रहे हो। मैं कब से तुम्हारे द्वार पर दीन होकर तुम्हें पुकार रहा हूं !

हे जगत् के गुरु ! है जगत् के स्वामी ! मालूम होता है कि दुनिया की हवा तुम्हें भी लग गई है !

हूं कबका मुल्तजी सुनते नहीं कुछ इल्तिजा, साहब।
तुम्हें भी लग गई शायद जमाने की हवा, साहब ।।

शब्दार्थ : मुल्तजी=प्रार्थी। इल्तिजा=प्रार्थना ।

३५

प्रगट भये द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरो कलेस सब, केसो केसोराय ।।

द्विजराज (चन्द्र) वंश में तुमने जन्म लिया और ब्रज में आकर तुम बस गये।

हे केशव ! हे केशवराय ! मेरे सभी क्लेशों का निवारण करदो।

लाला भगवानदीनजी ने इसका यह अर्थ किया है:

"हे कृष्ण-रूप ! केशव (पिता-कविवर बिहारी के पिता का नाम केशव था।) मैं द्विजराज-कुल (ब्राह्मण वंश) में पैदा हुआ और अपनी इच्छा से ब्रज में आकर बस गया। सो हे केशव ! मेरे सब क्लेश हरो।"

प्रगट द्विजराजकुल में हो, लिया ब्रज-भूमि में डेरा।
मिटा दो दर्द केशवराय केशव की तरह मेरा॥

३६

घर-घर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु ह बड़ों लखाय॥

देखो तो उसे, दीन बनकर घर-घर वह फिरता है, और हरेक से याचना करता हैं। ऐसा क्यों ?

क्योंकि उसने लोभ का चश्मा लगा रखा है, इसलिए छोटा आदमी भी उसे बड़ा ही दीखता है।

है दर-दर मांगता फिरता परेशां डोलता घर-घर।
लगाये हिर्स का ऐनक दिखाता कह्न भी मेहतर॥

शब्दार्थ : हिर्स=लोभ लालच। कह्न=छोटा मेहतर=बड़ा।

३७

कीजे चित सोई तरौं, जिहि पतितन के साथ।
मेरे गुन-अवगुन-गन्नन, गनो न गोपीनाथ॥

मुझमें क्या तो गुण हैं और क्या दोष, और वे कितने हैं, इस सबकी गिनती न करो, गोपीनाथ !

वैसा ही कृपा का बर्ताव मेरे साथ करो, जैसा कि दूसरों के साथ किया है।

मतलब यह कि दूसरे पतितों के साथ मैं पतित भी तुम्हारी कृपा पाकर संसार-सागर से तर जाऊं।

तरूं मैं आसियों के साथ शफकत ऐसा ही कीजे।
मेरे ऐबो हुनर पर ध्यान, गोपीनाथ, मत दीजे॥

शब्दार्थ : आसी=पापी। शफकत=कृपा। हुनर=गुण।

३८

जो अनेक पतितन दियो, मोह दीजे मोष।
जो बांधो अपने गुननि, तो बांधे ही तोष॥

जो मोक्ष अनेक पापियों को आपने दिया है, वही मुझे भी दो, और यदि बांधने में ही आपको सन्तोष होता है, तो अपने गुणों से मुझे बांधलो।

['गुण' के यहां दो अर्थ हैं : एक तो ईश्वरीय गुण, और दूसरा अर्थ है रस्सी।]

बहुत से आसियों को मोक्ष दी जैसे, मुझे दीजे।
अगर बांधे क़नाअत है तो बांध अपने गुनों लीजे॥

शब्दार्थ : क़नाअत=सन्तोष।

३९

कोऊ कौरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मोर संपति जदुपति सदा, विपति-बिदारनहार।।

भले ही कोई करोड़ों का संग्रह करे और चाहे लाखों या हजारों का,

मेरी सम्पदा तो एक कृष्ण ही हैं, जो हर विपत्ति को दूर कर देते हैं।

करोड़ों कोइ जोड़े या असंखों की धरे दौलत।
मेरे तो मायए शादी मुसीबतसोज़ हैं यदुपत।।

शब्दार्थ : मायए शादी = धन दौलत व खुशी। सोज = जला देनेवाला

४०

ज्यौं ह्वै हौ त्यौ होहुंगो, हौ हरि अपनी चाल।
हठ न करो अति कठिन है, मो तारिबौ गोपाल।।

मैं तो जैसा भी हूं, वैसा ही रहूंगा, अपनी करनी को और उसके फल को कैसे बदलूं ?

लेकिन हे गोपाल, तुम जिद न करो। तुम्हारा यह हठ अच्छा नहीं कि जब मैं सुधर जाऊंगा, तभी तुम भवसागर से तारोगे। मुझे तारना सहज नहीं है, बड़ा ही कठिन है।

बुरा हूं या भला जैसा हूं कुछ आदत से लाचारी ।
तरन.तारन न हठ कीजे मेरा तरना कठिन भारी ॥

४१

करौ कुबत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगी लाल ॥ ४१ ।

हे दीनबन्धु ! करे दुनिया मेरी बुराई जितनी भी चाहे । मैं अपनी कुटिलता छोड़नेवाला नहीं, इसलिए कि तुम्हें मैं अपने हृदयमन्दिर में बसा लेना चाहता हूं । तुम त्रिभंगी हो, इसलिए तुम सीधे घर में कैसे बसोगे, और यदि वहां आकर बस जाओगे तो तुम्हें सुख नहीं मिलेगा ।

कजी क्यों छोड़ दूं नुकसान क्या दुनिया के हंसने से ।
त्रिभंगी लाल! कुलफत होगी, सीधे दिल में बसने से ॥

शब्दार्थ : कजी=टेढ़ापन । कुलफत=दु:ख ।

४२

मोहिं तुम्हे बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज ।
अपने अपने बिरद की, दुहुन निबाहन लाज ॥

मेरे और तुम्हारे बीच में हे यदुराज ! बहस बढ़ गई है । देखें, दो में अब कौन जीतता है ।

बात अपने विरद की है, और उसकी लाज हम दोनों को है।

मेरा विरद है पाप करते रहना, और तुम्हारा विरद है पापियों को तारना।

हमारी औ' तुम्हारी लग रही है होड़ जदुराई।
किसे हो जीत, दोनों को है अपने फन में इकताई॥

शब्दार्थ : फन=कला।

४३

निज करनी सकुचाहि कत, सकुचावत यहि चाल।
मोहूं से अति विमुख त्यौं, सनमुख रहि गोपाल॥

मुझे तो मन में संकोच होता ही था, अपनी करनी की तरफ देखते हुए,

हे गोपाल! आप मुझे और ज्यादा क्यों लज्जित करते हैं इस चाल से कि मुझ जैसे की तरफ भी आप सामने रहते हैं, जिसने आपकी ओर बिल्कुल पीठ फेर ली है।

बद आमाली से हूं खुद शर्मंगी, हरि तह्ल मत दीजे।
विमुख-सा जान सन्मुख आके अब स्वामी खबर लीजे॥

शब्दार्थ : बद आमाली=बुरी करनी।

४४

तौ अनेक अवगुन भरे, चाहे याहि बलाय।
जो पति सम्पति हू बिना, जदुपति राखे जाय॥

मेरे पास कोई सम्पत्ति तो है नहीं, फिर भी यदुराज यदि मेरी लाज रखें तो ऐसी सम्पत्ति को मेरी बला चाहे, जिसमें

अवगुण-ही-अवगुण भरे हों ।

भरी सदहा नुकायस से इसे मेरी बला चाहे ।
जो बिन संपत्ति ही जदुपति मेरी पति जग में निबहि ।।

शब्दार्थ : नुकायस=दोष ।

४५

हरि कीजत तुमसों यहै, बिनती बार हजार ।
जेहि-तेहि भांति डरो रहौं, परो रहौं दरबार ।।

एक नहीं हजार बार यही प्रार्थना है आपसे कि हे हरि, जैसे भी बने, अपने द्वार पर मुझे पड़ा रहने दीजिए ।

हजारों बार है सरकार! इतनी इल्तिजा मेरी ।
पड़ा दरबार में, आंखों लगाऊं खाके पा तेरी ।।

शब्दार्थ : इल्तिजा=प्रार्थना । खाके पा=चरणों की धूल ।

४६

तौ बलियै भलियै बनी, नागर नन्द-किसोर ।
जो तुम नीके कै लखौ, मो करनी की ओर ।।

हे नागर नन्दकिशोर ! यदि तुम मेरे कर्मों की तरफ भली भांति देखोगे, उनकी जांच करोगे, बलिहारी, तब तो मेरी भली बनने से रही ।

मेरी करनी की नीके कर लखो गर, आप नटनागर ।
बनी-सी अनबनी बनकर, घनी हो पार भवसागर ।।

४७

अपने-अपने मत लगे, बाद मचावत सोर।
ज्यों-त्यों सबही सेइबो, एकै नन्दकिसोर॥

सारे मतवादी अपना-अपना मत सिद्ध करने के लिए बेकार बकवास करते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि चाहे जिस तरह हो, भिन्न-भिन्न रीति से, अलग-अलग मार्ग से सब एक नन्दकिशोर की ही सेवा-उपासना करते हैं।

नशे में चूर बकते अपने-अपने मत को मतवाले।
मेरे मत से छके पी-पी के प्रीतम प्रेम के प्याले॥

४८

समै पलटि पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भो अकरुन करुनाकरौ, यहि कुपूत कलिकाल॥

समय पलटा कि प्रकृति भी पलट गई। कौन ऐसा है, जो ऐसे समय अपनी चाल को नहीं छोड़ देता ?

इस पापी कलिकाल में करुणासागर भगवान् ने भी अपनी करुणा को त्याग दिया है !

पलटती है प्रकृति सब की समय पाकर बना कामी।
हुए अकरुन, अहो कलिकाल में करुनाकरन स्वामी॥

४९

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्जल होय॥

कोई समझनेवाला नहीं, समझ सकता भी नहीं इस चित्त की गति को, इसकी दशा को, जो अनुराग के रस में डूब गया है।

अजब दशा है कि ज्यों-ज्यों सुन्दर श्याम के रंग में यह डूबता है, त्यों-त्यों उज्ज्वल होता है ! कैसी उल्टी बात है कि श्याम रंग में डूबकर यह चित्त उजला हो जाता है, निर्मल हो जाता है।

समझना इश्क परवर दिल की कैफ़ीयत का है मुश्किल।
ये ज्यों-ज्यों श्याम रंग डूबे ही त्यों-त्यों और ही उज्जल ।।

शब्दार्थ : कैफ़ियत=हालत, दशा।

५०

नंद-नंद गोविन्द जय, सुख-मंदिर गोपाल।
पुंडरीक लोचन ललित, जय-जय कृष्ण रसाल ।।

जयति गोपाल सुख-मन्दिर, जयति गोविन्द नंद-नन्दन।
कमललोचन ललित लीला, जयति जय कृष्ण जगवन्दन ।।

# लोक-व्यवहार

१

इक भीजे चहले परे, बूड़े बहे हजार।
कितो न औगुन जग करत, नै वै चढ़ती बार ।।

चढ़ती हुई नदी में कोई तो सिर्फ भीग जाता है, कोई वहां दल-दल में पड़ जाता है, कोई उसमें डूब जाता है और हजारों (तेज धार में) बह जाते हैं।

यही हाल चढ़ती हुई जवानी का है। दुनिया में यह न जाने कितने अवगुण कराती है।

कोई भीगे पड़े चहले, कोई डूबे, बहे सदहा।
नहीं क्या-क्या सितम करती है, चढ़ती उम्र औ दरिया ।।

२

जो न जुगुति पिय-मिलन की, धूरि मुकुति-मुख दीन।
जो लहिये संग सजन तो, धरक नरक हू कीन ।।

ऐसी मुक्ति के मुंह में धूल झोंक देनी चाहिए, जो प्रीतम से मिलने की युक्ति न बताये।

और, अगर नरक में अपने प्रीतम का साथ मिलता हो, तो उसमें जाने का डर क्या ?

नहीं गर यार जन्नत में तो वो नारे जहन्नुम है ।
अगर दोजख में है प्यारा तो वो जन्नत से क्या कम है ।।

शब्दार्थ : जन्नत=मोक्ष । नारे जहन्नुम=नरक के समान ।
दोजख़=नरक ।

३

तंत्रीनाद कबित्तरस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग ।।

वीणा की झनकार, कविता का रस, मधुर राग और प्रीति के रस में जो सर्वांग डूब गये, समझलो वे ही इस संसार सागर से तर गये ।

इनके रसों में जो नहीं डूबे, कहना चाहिए कि वे भव-सागर में डूब गये ।

बहारे हुस्न मोसीकी, मजाके शैर मस्ताना ।
नहीं डूबे सो डूबे औ तरे डूबें जो फरजाना ।।

शब्दार्थ : हुस्न=सौन्दर्य । मोसीकी=संगीत । शैर=कविता ।

४

कोरि जतन कोऊ करो, परै न प्रकृतिहिं बीच ।
नल बल जल ऊंचे चढ़े, तऊ नीच को नीच ।।

करोड़ों जतन करे कोई, पर स्वभाव में कुछ भी अन्तर नहीं आता।

पानी नल के बल से ऊपर चढ़ जाता है, पर उससे अलग हो जाने पर वह नीचे को ही बहता है, क्योंकि नीचे की ओर बहना ही पानी का स्वभाव है।

रियल नेचर है जो जिसकी उसी पर वो ठहरता है।
चढ़े नल बल जो जल ऊंचे तो नीचे ही को गिरता है॥

शब्दार्थ : रियल नेचर (अंग्रेजी शब्द)=वास्तविक स्वभाव।

५

दुसह दुराज प्रजानि को, क्यों न बढ़ै अति द्वंद।
अधिक अंधेरो जग करै, मिलि मावस रवि चंद॥

एक ही राज्य में अगर असहनीय तेजस्वी दो राजा हों तो प्रजा का कष्ट निश्चय ही बढ़ जाता है।

सूरज और चन्द्रमा अमावस की रात को एक राशि पर जब होते हैं, तो वे संसार में अधिक अंधेरा कर देते हैं।

जमैयत एक जा दो शाह की है वज्ह वीरानी।
अमावस करती है मिल माहो शारिक की जहांबानी॥

शब्दार्थ : वज्ह=वजह, कारण। वीरानी=बेरौनकी, अशोभा, दुख

माह=चन्द्रमा। जहांबानी=हुकूमत, शासन।
शारिक=सूर्य।

६

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलौ-भलौ कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप दान॥

दुनिया में बुरे का ही आदर होता है। यह अजीब बात है। ग्रह यदि शुभ होता है, तो उसके लिए न जप किया जाता है, न दान। ऐसा अशुभ ग्रह के लिए ही करते हैं।

है दस्तूरे परस्तिश खास अहले फितनाओ शर का।
भले को कह भला छोड़ें व पूजननहस अख्तर का॥

शब्दार्थ : परस्तिश=पूंजन। फितनाओ शर=उत्पात करनेवाला।
नहस=अशुभ। अख्तर=ग्रह।

७

कहैं इहै सब स्रुति सुमृति, इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, पातक, राजा, रोग॥

सारे वेद और स्मृतियां एक ही बात कहती हैं, और समझदार लोग भी यही कहते हैं कि पाप, राजा तथा रोग ये तीन निर्बल को ही सदा दबाते हैं।

मकूला आकिलों का है यही वेदादि गाते हैं।
गुनह, राजा, मरज ये ज़ेरदस्तों को दबाते हैं॥

शब्दार्थ : मकूला=कथन। गुनह=पाप। मरज=रोग।
ज़ेरदस्त=कमज़ोर।

८

बड़े न हजै गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सौं कनक, गहनो गढ़ो न जाय॥

सिर्फ नाम का बड़ा होने से असल में कोई बड़ा नहीं हो जाता।

'कनक' को धतूरा भी कहते हैं और सोना भी, पर धतूरे से गहने तो गढ़े नहीं जाते हैं।

'बिला सीरत मुसम्मा बन कोई हरगिज नहीं बढ़ता।
धतूरे से, कनक कहते हैं, पर ज़ेवर नहीं गढ़ता॥

शब्दार्थ : सीरत=गुण। मुसम्मा=नाम रखने से।

९

गुनी गुनी सब कोउ कहैं, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यो कहूं तरु अर्क तें, अर्क समान उदोत॥

दुनिया किसी को गुणी कहती रहे, तो भी बिना गुणवाला गुणी नहीं हो सकता।

अर्क यानी अकौआ के पौधे से अर्क अर्थात् सूर्य की तरह प्रकाश होना न सुना गया है, न देखा गया है।

'अर्क' के दो अर्थ होते हैं : अकौआ का पौधा, और सूरज।

कहें गो बेहुनर को बाहुनर कब बोलवाला है।
किसी ने अर्क से क्या अर्क में देखा उजाला है॥

१०

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होत सुगंध॥

जिसने अपना धंधा कुमति को बना लिया है, उसे अच्छी संगति भी मिल जाये, तो भी वह सुमति नहीं पा सकता।

कपूर के डब्बे में हींग को रख देने से उसमें सुगंध नहीं आ सकती।

मुअस्सर नेक शोहबत से नहीं होते कभी बदखू।
रखें काफूर में भी हींग पर देती नहीं खुशबू॥

शब्दार्थ : मुअस्सर=प्राप्त होना। शोहबत=संगति।
बदखू=दुर्बुद्धि।

११

सबै हंसत करतारि दे, नागरता के नांव।
गयो गरब गुन को सबै, बसें गंवारे गांव॥

नगर का रहनेवाला कोई चतुर किसी गांव में जाकर बस जाता है, तो उसकी चतुराई का वहां कोई भी आदर नहीं करता, बल्कि गांव के लोग उसकी हंसी उड़ाते हैं। वेचारा तब पछताता है कि वह व्यर्थ ही अपनी चतुराई का घमंड कर रहा था।

उड़ाते मजहका है नाम शहरीयत से दे ताली।
हुई क्या कोरदेह में सरबरावर्दी की पामाली॥

शब्दार्थ : मजहका=मजाक, हसी, ठट्ठा। कोरदेह=बुरा या पिछड़ा हुआ गांव। सरबरावर्दी=प्रतिष्ठा, प्रवीणता। पामाली=बर्बादी।

१२

नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चले, तेतो ऊंचो होइ॥

एकसमान ही हालत है आदमी की और फुहारे के पानी की, इसे भलीभांति जानलो।

ये दोनों जितने ही नीचे या नम्र होकर चलते हैं, उतने ही ऊंचे हो जाते हैं।

है इन्सां और आबे नल की बिल्कुल एक सी हस्ती।
बलन्द उतना ही हो जितनी गवारा कर सकें पस्ती ।।

शब्दार्थ : बलद=ऊंचा। पस्ती=निचाई।

१३

बढ़त-बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत-घटत पुन फिरि घटे, वरु समूल कुम्भिलाय ।।

ज्यों-ज्यों संपत्तिरूपी पानी बढ़ता है, त्यों-त्यों मनरूपी कमल की नाल बढ़ती जाती है, ऐसा कहा जाता है। पर जल के घटने के समय उसकी नाल छोटी नहीं होगी, भले ही वह समूल कुम्हला जाये।

कंवल, दिल, आब व दौलत की तरक्की से हैं बढ़ जाते।
तनज़ुल्ल पर नहीं घटते हैं गो जड़ से हैं कुम्हलाते ।।

शब्दार्थ : तनज्ज़ुल=घटती।

१४

जो चाहो चटक न घटे, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह-चीकने चित्त ।।

अगर तुम चाहते हो कि मित्रता की चटक यानी चमक भी कम न हो और मित्र के मन में किसी तरह का मेल न आये, तो

स्नेह से चिकने हुए उसके चित्त पर राजसी की धूल को न छुआओ, उसपर अपनी हुकूमत न करो।

[नेह अर्थात् स्नेह के यहां दो अर्थ हैं : तेल और प्रेम।]

मुकद्दर हो न हमदम चाहते हो कुछ चमक आये।
सनेही चीकने चित पर न रज राजस की छू जाये॥

शब्दार्थ : मुकद्दर=मैला, गंदला। हमदम=मित्र।

१५

अति अगाध अति ओथरे, नदी कूप सर बाय।
सो ताकों सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय॥

दुनिया में कितने ही अथाह और उथले नदी-नाले, कुएं, तालाब और बावड़ियां हैं, पर जिसकी जहां से प्यास बुझती हो वही उसके लिए सागर है।

बहुत गहरे व उथले हैं नदी तालाब औ नाले।
मुखय्यर बह्र है जो सैर कर दे चाहनेवाले॥

शब्दार्थ : मुखय्यर=दाता। बह्र=समुद्र। सैर=तृप्त।

१६

मीत न नीति गलीत ह्वै, जो धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि॥

भाई, यह कोई समझदारी की बात नहीं कि अपने को भूखों मारकर धन इकट्ठा किया जाय।

यह सही है कि खाने और खर्चने के बाद अगर बच जायेगा तो करोड़ों रुपये संचित करो।

डियर! मिस्टेक है, क्या फायदा धन जोड़ जाने से।
बचाओ जो बचे लाखों, खरचने और खाने से॥

शब्दार्थ : डियर! मिस्टेक (अंग्रेजी शब्द) = प्यारे, यह ग़लती है।

१७

सोहत संग समान को, इहै कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बने, काजर नैनन जोग॥

सभी का यह कहना है कि समान का साथ ही शोभा देता है। जैसे होंठों पर पान की पीक और आंखों में काजल की रेख।

पान और होंठ दोनों का रंग लाल है, इसीलिए उनमें समानता शोभा देती है। इसी प्रकार काजल और आंखें दोनों का रंग काला है, इसलिए दोनों का साथ समान है।

है इस्के हमसरी ज़ेबा, यही कहते हैं दानिशवर।
है काजल आंख में मौजूं व सुरखी पान की लब पर॥

शब्दार्थ : हमसरी = समान। ज़ेबा = सुन्दर। दानिशवर = समझदार, अकलमंद। सुर्खी = लाली। लब = होंठ।

१८

अरे, परेखो को करे, तुही बिलोकि बिचारि।
किंहि नर किंहि सर राखियो, खरे बढ़े पर पारि॥

अरे भाई ! जांच-पड़ताल कौन करता फिरे, विचार कर तू ही खुद देख ले कि बहुत धन-दौलत होने पर किस मनुष्य ने अपनी मर्यादा को रखा है और किस तालाब ने बहुत अधिक पानी बढ़ने पर अपने बांध की रक्षा की है।

बहुत अधिक सम्पत्ति जब इकट्ठी हो जाती है, तब मनुष्य अपनी मर्यादा का ध्यान नहीं रखता, और तालाब अपनी पाड़ को काट देता है जब उसमें बहुत अधिक पानी भर जाता है।

बढ़े कुनबा तो कहिये कौन किस-किस के परख जोहर।
किसे समझें कलां या खुर्द या किसको कहें हमसर॥

शब्दार्थ : कलां=बड़ा। खुर्द=छोटा। हमसर=बराबर।

१६

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात हैं, या पाये बौराय॥

धतूरे में जितनी मादकता होती है, उससे सौगुनी मादकता सोने में है।

आदमी बावला हो जाता है धतूरा खा जाने से, लेकिन सोने को तो पाते ही वह मतवाला हो जाता है।

[कनक के यहां दो अर्थ हैं—एक तो धतूरा और दूसरा सोना।]

मुनश्शी तर कनक से ये कनक क्यों कर न कहलाये।
उसे खाये से बौराये इसे पाये ही बौराये ।।

शब्दार्थ : मुनश्शी = मादक ।

२०

बुरो बुराई जो तजे, तो चित खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनै लोग उतपात ।।

अगर बुरा आदमी बुराई को छोड़ दे, तो उससे मन में बहुत ड़र लगता है ।

जैसे, चन्द्रमा में यदि कलंक न रहे, तो ऐसा लगता है कि कोई उत्पात होनेवाला है ।

बदी को तर्क करदे बद तो इसमें खौफ जानी है।
अगर बेदाग मह निकले तो शामत की निशानी है ।।

शब्दार्थ : तर्क करदे = छोड़ दे । बद = बुरा आदमी ।
महु = चन्द्रमा । शामत = आफत, संकट ।

२१

जिन दिन देखे वे सुमन, गई सु बीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब की, अपत कटीली डार ।।

जिन दिनों उन खिले हुए फूलों को देखा था, वे बहार के दिन अब बीत गये।

अरे भौंरे! अब तो गुलाब की बिना पत्तों की कांटेदार डाल ही बाकी रह गई है।

वो गुल देखे थे जब, बीती वो अब फस्ले बहारी है।
गुलाबों में रही अलि शाख अब पुरखारो आरी हैं॥

शब्दार्थ : फस्ले बहारी=बसन्त का मौसम। शाख=डाल।
पुरखार=कांटों से भरा हुआ। आरी=बिना पत्ते का, नंगा।

२२

इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहै बहुरि बसंत ऋतु, इन डारन वे फूल॥

भौंरा गुलाब की जड़ से लिपटा रहता है, यह आशा लेकर कि इन डालों में वे ही फूल फिर फूलेंगे, वसन्त की बहार आने पर।

वईं उम्मेद जम्बूरे सियाह गुलगूं से है अटके।
बहार आये फिर इन शाखों शिगूफे होंगे वो लटके॥

शब्दार्थ : जम्बूरे सियाह=भौंरा। गुलगूं=गुलाब। शिगूफ़ा=कली।

२३

बहकि बड़ाई आपनी, कत राचति मतिभूल।
बिन मधु मधुकर के हिये, गड़ै न गुड़हर फूल।।

अरे मतिमंद ! झूठी तारीफ या चापलूसी से तू क्यों बहक रहा है, क्यों खुश हो रहा है अपनी बड़ाई सुन-सुनकर।

गुड़हर का फूल बिना मधु के भौंरे को भाता नहीं।

बहक कर खुदसिताई से तू क्यों भूला है, ऐ गाफिल।
हुआ जम्बूर गुड़हर फूल की रसचाट से घायल।।

शब्दार्थ : खुदसिताई=आत्म-प्रशंसा, चापलूसी।

२४

जदपि पुराने, बक तऊ, सरवर निपट कुचाल।
नये भये तु कहा भयौ, ये मनहरन मराल।।

सरोवर, तुम अपने पुराने ही संगी-साथियों को चाहते हो यह बहुत बुरी बात है।

पुराने साथी आखिर बगुला ही तो हैं।

हां, हम नये हैं मन हरनेवाले मराल। जरा सोचो तो बगुले अच्छे हैं या हम हंस ?

नयों से तुम्हारी विरक्ति कैसी ?

पुराने हैं ये माहीख्वार गो लेकिन कुचाली हैं।
नये हैं झील में ये हंस पर दिलचस्पो आली हैं।।

शब्दार्थ : माही ख्वार=मछली खानेवाला बगुला।
दिलचस्प=मनोहर।

२५

अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारि।
कागनि सौं जिन प्रीति करि, कोकिल दई बिड़ारि।।

हे हंस ! इस नगर में तुम खूब सोच-विचारकर जाना।
इसने कौओं से प्रीति जोड़कर कोयल को भगा दिया है।

कहीं ऐसी जगह ऐ हंस ! आकिल पैर धरते हैं।
निकाली जिनने कोयल, काग की जो कद्र करते हैं।।

शब्दार्थ : आकिल=बुद्धिमान। काग=कौआ।

२६

को किह सकै बड़ेन सौं, लखे बड़ो हूं भूल।
दीने दई गुलाब को, इन डारन ये फूल।।

बड़ों से कौन कह सकता है, उनकी भारी भूल देख कर भी।

इन कंटीली डालों में कैसे सुन्दर फूल दे दिये हैं भगवान ने।
भूल को अगर बताया जाये तो सिरजनहार की यह निन्दा होगी।

बड़ों से कौन कह सकता है उनकी भूल लख भारी।
गुलाबों की ये शाखें, फूल वो कुदरत की बलिहारी॥

२७

वे न यहां नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गंवई गाँव गुलाब॥

यहां वे अच्छे पारखी नहीं हैं, जो तेरा आदर करते और तेरा मान बढ़ता।
गंवई गांव में गुलाब का फूलना न फूलना बराबर ही रहा।

नहीं शहरी यहां जो रंगो बू की कर सकें पहचां।
तेरा खिलना न खिलना देह में है सुर्ख गुल इकसां॥

शब्दार्थ : इकसां=एकसमान। देह=गांव।

२८

कर ले सूंघि सराहिकै, रहे सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गंवई गाहक कौन॥

हाथ में इत्र को लेकर बस सूंघ लिया।

अरे गंधी! कौन खरीददार है यहां गांव में तेरे गुलाब के इत्र का? यहां के लोग तो जरा-सी तारीफ करके चुप हो जाते हैं। यहां कौन गाहक है?

हथेली रख लगा नथनों से चुप साधी है कह फायक।
यहां अत्तार इत्रे-गुल का देह में कौन है शायक॥

शब्दार्थ : फायक=बढ़िया, उम्दा। शायक=रसिक, गाहक।



२६

को छूट्यो यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं-त्यौं उरझत जात॥

तू जाल में पड़ गया हिरन! अब इससे छूट नहीं सकेगा। फंदों को जितना ही सुलझायेगा कि भाग जाऊं, त्यों-त्यों उलझता ही जायेगा।

छुटा इस जाल से कौन ऐ हिरन क्यों तड़फड़ाता है।
सुलझना चाहता ज्यों-ज्यों उलझता ही वो जाता है॥



३०

पट पांखे, भखु कांकरे, सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही बिहंग॥

कबूतर, तेरे पंख ही तेरे वस्त्र हैं, और कंकड़ ही तेरा भोजन। फिर भी दुनिया में एक तू ही सच्चा सुखी है, क्योंकि तू अपनी कबूतरी के साथ सदा प्रसन्न रहता है।

खुराके संगरेजा, जुफ्त हमदम औ लिबासे पर।
कबूतर, बस तुही मसरूर है दुनिया में इक तायर।।

शब्दार्थ : संगरेजा=कंकड़। जुफ्त=जोड़ी। हमदम=साथी। लिबास=कपड़ा। मसरूर=प्रसन्न। तायर=पक्षी।

३१

स्वारथ सुकृत न स्रम बृथा, देखु बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पंछीहि न मारि।।

अरे पालतू बाज! तू व्यर्थ परिश्रम कर रहा है बेचारे पक्षियों को मार-मारकर।

इस शिकार के परिश्रम से न तो तेरा कोई अपना स्वार्थ सधता है, और न पुण्य-लाभ ही होता है।

अपने मालिक के इशारे पर क्यों गरीब पक्षियों को मार रहा है तू?

न जाती मुनफ़अत, शोहरत, अबस मिहनत है ए शाही।
पराये हाथ पड़ मत तायरों को मार तू बदबी।।

शब्दार्थ : मुनफ़अत=स्वार्थ। शोहरत=यश। अबस=व्यर्थ। शाही=बाज। बदबी=बुद्धू।

३२

दिन दस आदर पायके, करिले आपु बखान।
जौलौं काग सराधपख, तौलौं तो सनमान।।

अरे कौए ! तू अपना बखान भले ही करले, तू ने जो आदर पाया है वह थोड़े ही दिनों का है, केवल एक पखवारे का।
तेरा सत्कार कनागत पक्ष तक ही है।
श्राद्ध-पक्ष में कौआ को बुला-बुलाकर लोग बलि देते हैं।

भले दस-पांच दिन करले कुलाग़ अपनी सनाख्वानी।
कनागत पच्छ है जबतक तभी तक है ये मेहमानी।।

शब्दार्थ : कुलाग=कौआ। सनाख्वानी=आदर, सत्कार।

३३

मरत प्यास पिंजरा परौ, सुवा दिनन के फेर।
आदर दे दे बोलियत, बायस बलि की बेर।।

यह दिनों का फेर है कि सुआ तो प्यास से मर रहा है पिंजड़े में कैद, और कनागत-पक्ष में कौए को आदर से कागोर (बलि) देते समय बुलाते हैं।

समय के फेर तोता मर रहा पिंजरे में बिन पानी।
पौए कागौर कौए को बुलाते हैं खुशअलहानी।।

शब्दार्थ : खुशअलहानी=सत्कार की बुलाहट।

३४

जाके एकौ एकहू, जग व्यवसाय न कोय।
सो निदाघ फूले फले, आक डहडहो होय।।

अकौआ को देखो, उसके लिए कोई कुछ भी जतन नहीं करता, उसे कोई सींचता नहीं।

पर वह भगवान् के भरोसे प्रचंड गर्मी की ऋतु में खूब फूलता-फलता है।

खबरगीर उसका है कोई न पानी है न साया है।
अकौवा जेठ में फूला-फला क्या लहलहाया है।।

३५

नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनि तरुवर मति भूल।
अपत भये बिनु पाइहै, क्यों नव दल फल फूल।।

गलती न कर पेड़ ! यह मौसम वर्षा का नहीं है, जो सबको भरपूर दान देती है।

यह तो वसन्त है, बिना पत्ते फूल और फल तुझे कैसे मिलेंगे ?

नहीं बारिश, बसंत आया, दिया नाहक न जायेगा।
तू बेबरगी के बदले ए शजर फल फूल पायेगा।।

शब्दार्थ : नाहक=व्यर्थ। शजर=पेड़।

३६

आवत जात न जानिये, तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जवांई लौं घट्यो, खरो पूस दिन मान॥

कुछ पता नहीं चलता कि कब तो आते हैं और कब चले जाते हैं, पूस मास के दिनों का यह हाल है। तेज रहा नहीं, ठंड बढ़ गई। दिन की लम्बाई घटती ही गई, ठीक उसी तरह जैसे ससुराल में जा बसनेवाले दामाद का मान।

पता आने न जाने का, न मुख की रोशनाई का।
घटा है पूस का दिन, मान ज्यों खाना-जवाई का॥

शब्दार्थ : खाना = घर।

३७

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

गर्मी के मारे घबराये हुए सांप और मोर, तथा मृग और बाघ एक ही जगह बैठे दीख रहे हैं, जो कि स्वभाव से एक दूसरे के बैरी हैं।

ऐसा लगता है कि प्रचंड ग्रीष्म ऋतु ने सारे संसार को मानो तपोवन बना दिया है।

अंहिसा की महिमा है यह, "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः।" योग-सूत्र।

गिजालो शेर मोरो मार, यकजा बसते हैं बाहम।
तपोवन गरमिये आतिशफिशां ने कर दिया आलम।।

शब्दार्थ : गिजाल=हिरण। मार=सांप। बाहम=साथ।
आतिशफिशां = आग बिखेरने वाला।

३८

सीतलता रु सुगंध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवासे जो तज्यो, सीरा जानि कपूर।।

अगर ऐसा आदमी, जिसे पीनस का रोग हो, कपूर का त्याग करदे यह समझकर कि वह शोरा है, तबभी उसकी शीतलता और सुगंध की महिमा कम नहीं हो जाती, और न उसका मोल ही घट जाता है।

न क़द्रे, खुशबूओ खुनकी, न कीमत में कमी होगी।
तजे काफूर को शोरा समझ पीनस का गर रोगी।।

शब्दार्थ : खुनकी=शीतलता।

३९

मूड़ चढ़ाये हू रहै, पर्यो पीठ कच-भार।
रहै गरे परि राखिये, तऊ हिये पर हार।।

सिर पर चढ़ाने या आदर करने पर भी सारे बालों का भार पीठ की तरफ ही पड़ा रहता है।

और हालांकि हार गले पड़कर रहता है, तो भी उसे हृदय पर ही रखा जाता है।

मतलब यह कि योग्यता न रखनेवाले को आदर से रखने पर भी ऊंचा स्थान हम नहीं दे सकते, जबकि योग्य आदमी को अनादरपूर्वक रखें तो उसे उत्तम स्थान देना ही होगा।

चढ़े सर पर पड़े रहते हैं पीछे संबुले मुश्की।
गले का हार हैं पर हार हैं सीने पै ज़ेब आर्सी॥

शब्दार्थ : सम्बुले मुश्की=काले बाल।

४०

जो सिरधरि महिमा मही, लहियत राजा राव।
प्रगटत जड़ता आपनी, मुकुट पहिरियत पाव॥

मुकुट को राजे-महाराजे सिर पर धारण करते हैं तो उनकी महिमा बढ़ जाती है।

उसी मुकुट को यदि पैर में पहन लिया जाये, तो पहनने वाले की मूर्खता ही प्रकट होगी।

शहंशाहों की शौकत जो मुकुट सर चढ़ बढ़ाता है।
जो पहने कोई पैरों में तो हुम्क अपना जताता है॥

शब्दार्थ : हुम्क=नादानी।

४१

चले जाहु ह्यां को करत, हाथिन को व्यापार।
नहिं जानत या पुर बसत, धोबी ओड़ कुम्हार॥

अय हाथियों के व्यापारी! यहां से तुम चले जाओ। यहां

तुम्हारा यह हाथियों का व्यापार नहीं चलेगा, कोई गाहक नहीं मिलेगा ।

तुम्हें शायद यह मालूम नहीं कि यहां तो सारे धोबी, बेलदार और कुम्हार ही रहते हैं अर्थात् गधे रखनेवाले ।

खरीदे कौन हाथी, रास्ता ले यां से तू ऐ खर ।
नहीं क्या इल्म, बसते हैं यहां गिलकार श्रौ गाजर ॥

शब्दार्थ : गिलकार=बेलदार ।

४२

करि फुलेल को आचमन, मीठौ कहत सराहि ।
रे गंधी, मति अंध तू, अतर दिखावत ताहि ॥

फुलेल का आचमन करके जो उसकी तारीफ करता है कि क्या मिठास है, तू उसे अतर दिखाता है मूर्ख गंधी !

बरंगे श्राचमन जो रोग़ने गुल को है पी जाता ।
उसे क्या कोरदिल अत्तार इत्रेगुल है दिखलाता ॥

शब्बार्थ : रोग़ने गुल=फुलेल । कोर दिल=अकल का अंधा, मूर्ख ।

४३

विषम बृषादित की तृषा, जियौ मतीरनि सोधि ।
अमित अगाध जल, यारो मूढ़ पयोधि ॥

जेठ मास की इस प्रचंड गर्मी में तुम्हें प्यास बुझानी है, तो जाओ तरबूजों को खोजो और अपने प्राण बचाओ ।

छोड़ो उस मूर्ख समुद्र को, जिसमें अथाह जल भरा हुआ है। उसका खारा पानी तुम्हारे किस काम का ?

जिये जो शिद्दते गरमी में तर तरबूज को खाकर।
करेंगे मारवाड़ी वेहर वेपायां को क्या पाकर॥

शब्दार्थ : वेंहर=समुद्र। बेपायां=अथाह।

४४

चटक न छांड़त घटत हू, सज्जन नेह गंभीर।
फीको परै न बरु फटै, रंग्यो चोल रंग चीर॥

सज्जनों का गहरा प्रेम यदि घट जाये, तब भी उसमें चटकीलापन रहता है।

जैसे, मंजीठ में रंगे हुए कपड़े का रंग फट जाने पर भी फीका नहीं पड़ता।

सुजन महरे मतीं फीकी नहीं पड़ती न कुम्हलाती।
चटक रंग चोल चोली की फटे पर भी नहीं जाती॥

शब्दार्थ : महरै मतीं=प्रेम और गंभीरता।

'मंडल' का

## धर्म-अध्यात्म साहित्य

भागवत धर्म, खण्ड १
भागवत धर्म, खण्ड २
गीता-बोध
भारतीय दर्शन-सार
जैनधर्म का प्राण
आत्म-रहस्य
बुद्ध-वाणी
बोधिवृक्ष की छाया में
भगवान हमारा मित्र
श्रीअरविन्द का जीवन-दर्शन
गोस्वामी तुलसीदास के सुबोध दोहे
वृन्द कवि के सुबोध दोहे
नीति की बातें
हिन्दू धर्म
कबीरसाहब की सुबोध साखियां
कविवर बिहारी के सुबोध दोहे